International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-1 Jan-Feb-2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

लैंगिक असमानता के प्रति महिलाओं के बदलते दृष्टिकोण का अध्ययन

Vijay Kant Dubey,

Research Scholar, Dept. of Sociology, Kalinga University

Dr. Pratima Shukla,

Professor, Dept. of Sociology, Kalinga University

सारांशिका

वर्तमान समय में लैंगिक असमानता सम्बन्धी अध्ययन किसी राष्ट्र की सीमाओं के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाली समस्याओं में सम्मिलित विषय नही रहा, बल्कि यह एक अर्न्तराष्ट्रीय विषय हो गया है क्योंकि आधुनिक समय में विश्व का आकार लघु होता जा रहा है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की प्रक्रियाओं ने सभी राष्ट्रों की समस्याओं को एकमत कर दिया है। इसी कारण समाजशास्त्र जैसे विषय में लिंग संबंधी असमानता एवं समस्याओं का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख हथियार माना जाता है और साथ ही शिक्षा को लैंगिक समानता के साथ–साथ हर तरह की समानता लाने वाले तंत्र के रूप में देखा जाता है। यह बात भी सही है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं ने शिक्षा के द्वारा एक नये मुकाम को हासिल किया। वर्तमान में महिलाओं के प्रस्थिति के निर्धारण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन लैंगिक असमानता के सन्दर्भ में शिक्षा की भूमिका भी संदिग्ध नजर आती है, क्योंकि पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम का निर्माण अधिकांशतः पुरुष वर्ग द्वारा ही किया जाता है, साथ ही उनकी विषय वस्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था, संस्कृति, परम्परा एवं धर्म का समर्थन करती नजर आती है। शिक्षा की संस्कृति के कारण ही पुरुष एवं स्त्री के व्यवहार विचार और अकांक्षाओं में भिन्नता आती है और वे पुंजातीयता और नारीजातीयता के साँचे में ढ़लने लगते हैं। जबकि शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल उन्हें विकास के अवसर देना या उन्हें रचनात्मक अभिव्यक्ति की सुविधा देने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो लिंग के आधार पर सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले भेद–भाव का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए, इसे दूर करने का प्रयास कर सके और साथ ही साथ अन्य महिलाओं को भी इसके प्रति जागरूक कर सकें।

मुख्य शब्दः अकांक्षाओं, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक

प्रस्तावना

भारतीय समाज कई वर्गों में बँटा हुआ है। जिनमें काफी असमानता पायी जाती है। भारतीय समाज में पायी जाने वाली असमानता के तीन मुख्य स्रोत जाति, वर्ग और लिंग (जेण्डर) है। लैंगिक असमानता जाति एवं वर्ग में भी व्याप्त है। भारतीय सामाजिक संरचना में लैंगिक असमानता की जड़े काफी गहरी है तथा यह संस्थानिक और संरचनात्मक रूप लिये हुए है। लिंग (जेण्डर) के आधार पर महिला–पुरुष के बीच भेदभाव प्राचीन काल से होता आ रहा है। लिंग (जेण्डर) जैविक अवधारणा न होकर सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा है। लैंगिक असमानता को प्रथा, सामाजिक व्यवस्था, विभिन्न धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों का संरक्षण प्राप्त है। लिंग के आधार पर स्त्री और पुरुष के बीच जो भेदभाव है, वह पुरुष वर्ग द्वारा ही बनाया गया है। क्योंकि भारतीय धर्मग्रन्थ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी नियम (पितृसत्तात्मक व्यवस्था) आदि की रचना में पुरुष वर्ग की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पुरुष वर्ग द्वारा अपने को महिलाओं से श्रेष्ठ सिद्ध करने एवं उन्हें अपने नियंत्रण में रखने के लिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था, धर्मग्रन्थों एवं परम्पराओं का सहारा लिया गया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, धार्मिक नियमों, संस्कृति एवं परम्पराओं में निर्देशित महिलाओं के कर्तव्यों को की समाजीकरण प्रक्रिया द्वारा इस प्रकार उनके अन्दर प्रविष्ट करा दिया गया है कि लिंग (जेण्डर) के आधार पर उनके साथ जो भेदभाव किया गया, उसे वह अपना कर्तव्य समझने लगीं। वे अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार एवं शोषण को अपना भाग्य समझकर सहन करने लगी। चूँकि किसी भी सामाजिक व्यवस्था को चलाने के लिए किसी नियम या आधार की आवश्यकता होती है। उस समय भारतीय समाज का संचालन धार्मिक नियमों, परम्पराओं तथा सामजिक (पितृसत्तात्मक व्यवस्था) एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के आधार पर ही होता था। जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध एवं कुरीतियों को लाद दिया गया। बहुपत्नी विवाह, पर्दाप्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध, देवदासी प्रथा, दहेज प्रथा आदि। जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की स्थिति दिन–प्रतिदिन दयनीय होती गयी और वे मात्र भोग की वस्तु बनकर रह गयी। महिलाओं के लिए सबसे दुःखद स्थिति यह रही कि मनु जैसे सामाजिक कानूनविद्, तुलसीदास जैसे चिंतक एवं कबीरदास जैसे सामाजिक कुरीतियों पर कटाक्ष करने वाले सामाजिक चिंतकों ने भी महिलाओं के बारे में जो कहा, उसका समाज में महिलाओं के विरूद्ध ही इस्तेमाल किया गया।

लैगिक असमानता आशय

उत्तर आधुनिक युग में जिस एक मुद्दे ने नीति निर्माताओं का सबसे अधिक आकर्षित किया है। वह है लैगिंक विषमता, भारतमें लैगिंक विषमता स्त्री–पुरूषों के मध्य स्वास्थ, शिक्षा, आर्थिक, राजनीतिक असमानता को दर्शाता है। लिंग असमानता भारत का एक बहुआयामी मुद्दा है। स्त्रीयाँ कब तक वह अपनी अस्मिता की मशाल स्वयं जलायेगी? उसे कब तब पुरूष रूपी वैशाखी का सहारा लेना पड़ेगा? इसका अर्थ महिला और पुरूष दोनों से है। जबकि प्रकृति ने सेक्स का निर्धारण किया लैगिंग असमानता का मुद्दा मानव की विकृत मानसिकता का परिचायक है। पितृसत्तात्मक समाज ने उसे सम्मान न देकर दोयम दर्जे का घोषित कर दिया। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नोबेल पुरूस्कार विजेता आमृत्य सेन ने (2001) भारत में लैगिंक असमानता के सात कारण बताये है। लेकिन यहाँ कुछ अन्य पर भी चर्चा की जा रही है। जो लैगिंक असमानता हेतु पूर्णतः जिम्मेदार है।

लैगिंक असमानता के कारक

व्यवसायिक असमानताः महिलाओं को सशस्त्र बलो, सेना में प्रमुख भूमिका निभाने की अनुमति नहीं है।

इन्हें न तो स्थायी कमीशन स्वीकृत होता है न ही प्रशिक्षण दिया जाता है।

सम्पत्ति अधिकारः हालांकि सम्पत्ति हेतु महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त है परन्तु व्यवहार में महिलाएं एक प्रतिकूल स्थिति में है किन्तु उत्तराधिकार अधि. 2005 उसे समान उत्तराधिकार प्रदान करता है परन्तु कानून कमजोर रूप से लागू होने से महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की हो गयी है।

श्रम भागीदारीः भारत में महिला और पुरूषों में श्रम बराबरी है लेकिन मजदूरी असमानता है आज भी भारत में महिलाओं की पहूँच बैंकिग सेवाओं तक उस हद तक नहीं हो पायी है जिस हद तक होनी चाहिए जिससे वे सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं प्राप्त कर पा रही है।

शिक्षाः भारत की जनगणना 2011 के अनुसार महिला साक्षरता की दर पुरूष साक्षरता से कम है महिला साक्षरता जहाँ 65.46 प्रतिशत है वही पुरूष 82.14 प्रतिशत साक्षर है। क्योंकि साक्षरता से लेकर उच्च शिक्षा महिला विरोधी पूर्वाग्रह से युक्त है।

स्वास्थः महिला पुरूषों की जीवन प्रत्याशा, स्वास्थ आदि में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, रोग, कुपोषण, तनाव के कारण पुरूषों की तुलना में कमजोर स्थिति में है।

पितृसत्तात्मक प्रथाः पुरूष इस प्रथा से योग्य हो या न हो परिवार में सम्पत्ति तथा पदवी दोनों प्राप्त करता है। जो विरासत में पिता से पुत्र को मिलता है पुत्री विवाह के साथ पति के घर चली जाती है।

दहेज प्रथाः इस प्रथा ने लड़कियों को परिवारो पर बोझ बना दिया तथा विवाह उपरान्त शोषण का साधन जिससे पुरूष और स्त्रियों में स्वतः ही असमानता या ये कहे उच्चतर व निम्नतर की मानसिकता पैदा कर दी है।

लिंग आधारित हिंसाः इसमें महिलाओं के साथ रेप, यौन, उत्पीड़न, अपहरण, साथी या रिश्तेदारों द्वारा करता, अवैध व्यापार, देह व्यापार, अश्लीलता सभी अपराध किये जाते है। ये अपराध असमानता की सर्वोच्च पराकाष्ठा को इंगित करते है।

धार्मिक अनुष्ठानों व वृद्धावस्था हेतु पुत्र चाहतः भारत में माता–पिता के अंतिम संस्कार का एकमात्र अधिकार पुत्र को प्राप्त है तथा यज्ञ व अन्य कर्मकाण्डों को केवल पुत्र ही अंजाम दे सकता है, वृद्धअवस्था में पुत्र चाहे वृद्ध माँ बाप की सेवा करे या नहीं करे लेकिन पुत्री परायाधन या पति के घर जाने की अवधारणा से माता–पिता उसे केवल दायित्व के रूप में मानते है जबकि पुत्र को बुढ़ापे की लाठी।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

भारतीय समाज एक परम्परागत एवं पितृसत्तात्मक पुरुष प्रधान समाज है। हमारे कुछ एक धर्म ग्रंथों में भी समाज को निर्बाध रूप से संचालित करने के लिए पुरुषों की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। जैविकीय आधार पर भी भारत में बहुसंख्यक विद्वानों ने पुरुषेां की ही प्रधानता को समाज के संचालन का मूल आधार माना है। इस प्रकार भारतीय समाज में लैंगिक असमानता प्राचीन काल से ही विद्यमान है। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे नीति निर्माताओं तथा सरकार ने लैंगिक असमानता को समाप्त करने के लिए अनेक संवैधानिक तथा कानूनी प्रावधान किये, फिर भी लैंगिक असमानता अभी भी समाज में उपस्थित है। दूसरी तरह शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का आधार एवं सभी समस्याओं को हल करने के एक प्रमुख साधन के रूप में माना जाता है। वर्तमान में स्त्री शिक्षा में वृद्धि तो हुई, फिर भी लैंगिक असमानता के मुद्दे पर कोई खास बदलाव नहीं हो पा रहा है। ऐसी दशा में प्रस्तुत अध्ययन समाजशास्त्रीय साहित्य हेतु आवश्यक अपरिहार्य समचीन एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

अध्ययन की समस्या

प्रस्तुत अध्ययन लैंगिक असमानता के प्रति महिलाओं के बदलते दृष्टिकोण में शिक्षा की भूमिका पर केन्द्रित है, जिसके अन्तर्गत शिक्षा एवं लैंगिक असमानता के अन्तःसम्बन्धों को विवेचित करना अध्ययन की मूल समस्या के रूप में चयनित किया गया है। इस अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में लिंग (जेण्डर) के आधार पर पुरुष वर्ग द्वारा अपने को श्रेष्ठ मानते हुए, महिलाओं को अपने नियंत्रण में रखने के विचार एवं पुरुष प्रभुत्व वाले पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के प्रति महिलाओं के दृष्टिकोण में शिक्षा के द्वारा क्या परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं?

अध्ययन का उद्देश्य

1. लैंगिक असमानता के लिए उत्तरदायी कारकों को स्पष्ट करना।

2. आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता के प्रति महिलाओं के बदलते दृष्टिकोण में शिक्षा की भूमिका की विवेचना करना।

अध्यन पद्धति एवं तथ्य संकलन–

समस्या से सम्बन्धित वास्तविक तथ्यों के संकलन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत तथ्य संकलन हेतु अध्ययन क्षेत्र की निदर्श के रुप में अध्ययन में सम्मिलित की गयी शिक्षित महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन एवं वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया। जब कि द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, अप्रकाशित शोध ग्रन्थों, निबन्धों, पत्र–पत्रिकाओं, सरकारी रिकार्डों, पूर्ववर्ती शोध, रिपोर्ट आदि का उपयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन एक आनुभाविक अध्ययन है। इसके अन्तर्गत विवरणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है।

परिणाम

भारत में लैंगिक असमानता :–

भारत पुरुष प्रधान एवं पितृसतात्मक समाज है। भारत में पुरुषों एवं स्त्रियों में लैंगिक असमानता निम्न रुपों में देखी जा सकती है–

लिंग भेदभावः सामाजिक अत्याचार– प्रत्येक पितृसतात्मक परिवार का सामान्य लक्षण है कि वहॉ पुरुषों की प्रधानता होती है और स्त्री का अवमूल्यन होता है। भारतीय समाज में लडकी का जन्म ही अभिशाप है। पुत्र मुक्तिदाता, बुढापे का सहारा और घर की पूॅजी है बल्कि पुत्री का जन्म एक दायित्व और कर्जा है। के.एम. पाण्क्किर;1986 ने स्पष्ट लिखा है कि हिन्दू सामाजिक जीवन की सबसे प्रमुख समस्याओं में से एक हिंदू सयुक्त परिवार में स्त्री को प्रदान की जाने वाली प्रस्थिती है। हिंदू सामाजिक व्यवस्था पुत्री को परिवार का भाग नही, ऐक ऐसा आभूषण मानकर चलती है जो गिरवी रखा है और जब उसका कानूनी मालिक आयेगा और उसकी मांग करेगा तो उसे दे दिया जायेगा। लडके और लडकियों के खेल, पढाई के विषय, संस्कार भी अलग अलग है। स्त्री के लिए शुचिता सबसे बडा मूल्य है जिसका अर्थ से विवाह से पहले कोई उसके शरीर को यौन की दृष्टि से स्पर्श न करे और विवाह के बाद मन, वचन और कर्म से वह पति के अतिरिक्त किसी अनय का स्पर्श न होने दे। लज्जा स्त्री का गहना होता है और पति परमेश्वर उसका आदर्श। शिक्षा में असमानता – वैदिक युग में लडकी भी लडकों की भांति आश्रमों में शिक्षा के लिए जाती थी। घीरे–धीरे उसे शिक्षा से दूर किया जाता रहा और उसके लिए एकमात्र संस्कार विवाह ही माना जाने लगा। मुसिलम काल में तो स्त्री पूर्णतः निरक्षर थी। 2001 की जणगणओं के अनुसार यह 39.42 तथा 54.16 एवं अब की नवीन जनगणना 2011 में यह 65.46 प्रतिशत है। वास्तव में यह प्रगति नगरीय क्षेत्रों में उच्च और मध्यम वर्ग के बीच अधिक हुई है।

रोजगार में असमानता– 2009–10 में यह सहभागिता लगभग 31.2 प्रतिशत रही है। स्त्रियो का गृहस्थ कार्य अनुत्पादक माना जाता है। घर से बाहर का कार्य ही उत्पादक माना जाता है। कृषि क्षेत्र में जंहा 80 प्रतिशत् महिलाएं काम कर रही है वहीं स्त्री को पुरुष से कम मजदूरी मिल रही है। घरेलु उद्योगों में महिलाओं के लिए काम के घण्टे अधिक है और श्रम कल्याण की कोई व्यवस्था नही है। वॅहा उनके यौन शोषण का भय भी बना रहता है।

स्वास्थय एवं पोषण संबंधी सुविधाओं मे असमानता– बचपन से ही लडकीयों को वह पोषक पदार्थ नही दिये जाते जो लड़को को दिये जाते है। प्रायः घर में वही स्त्री जो अपने पति और बच्चों के लिए अच्छे से अच्छा भोजन बनाती है, बाद में जो बच जाता है उसे खाती है और अगर बासी भोजन रखा है तो पहले उसे खाती है। मातृत्व का भार भी उस पर सबसे ज्यादा होता है। एक ओर गरीब स्त्रियों को तो उचित चिकित्सा एवं पोषण मिलना ही दुश्वार है तो वहीं दुसरी ओर धनी स्त्रियां अत्यधिक दवाइयों का सेवन या आलसी जीवन एक समस्या बन गयी है। परिवार नियोजन की दृष्टि से भी हमारे समाज में इसका प्रमुख लक्ष्य महिलाओं को ही बनाया गया है।

यौन शोषण एवं उत्पीडन – पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों की प्रमुख समस्या उनका यौन शोषण एवं यौन उत्पीडन है जैसे – वेश्यावृति, देवदासी, अश्लील साहित्य, विज्ञापन, चलचित्र, कैबरे नृत्य और छेड़–छाड़ जैसे अनेक कृत्य शामिल है। इसके अतिरिक्त आज नग्न एवं अर्द्धनग्न महिलाओं की तस्वीरों, काम चेस्टाओं और कुत्सित किस्सों पर आधारित अश्लील साहित्य भी बाजार में धन कमाने का एक सरल साधन बन गया है। आज अधिकांश चलचित्र स्त्री के यौन शोषण के ज्वलन्त उदाहरण है।

महिलाओं के प्रति हिंसा – स्त्री के प्रति हिंसा दो रुपों में देखी जा सकती है – घरेलु तथा घर से बाहर । पहले में घर–गृहस्थी में किया जाने वाला शारिरीक और मानसिक उत्पीडन है। वे पति द्वारा मार पीट और यातना का शिकार बनती है। साामजिक दृष्टि से महिला बढा असहाय महसुस करती है क्योंकि सारा पुरुष समाज उसे, जॅहा भी जाये, उसे समझौता करने की सलाह देते है। सोनल का कहना सही है कि इस घरेलु हिंसा के विरुद्ध संगठित प्रयास किया जाना जरुरी है। देवकी ;1987 ने घर से बाहर स्त्री के प्रति हिंसा में हिरासत की स्थिती में हिंसा, बालात्कार, यौन उत्पीडन, अश्लील साहित्य एवं विज्ञापन, वेश्यावृति तथा स्त्रियों का अनैतिक व्यापार शामिल किया है। भारत में हर दो घण्टे में एक बालात्कार की घटना घट जाती है। सविया वेगास;1987) ने उचित लिखा कि 'दन्तविहिन कानून और नपुंसक जनाक्रोश' के कारण अपराधी बच निकलते है।

स्त्री हत्या – सत्री हत्या वह हत्या कही जा सकती है जो उस समय हो जबकि वह मॉ के गर्भ में है, या जन्म लेने के बाद स्त्री हत्या के रुप में और चाहे जलती बहु या किसी अन्य प्रकार के उत्पीडन से मारने के रुप मे है। बारबरा डी. मिलर (1987) ने कहा है कि स्त्री शिशु हत्या प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो रुपों में हो सकती है।

सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता

भारतीय समाज बहुलवादी संस्कृति का है। अनेक भाषा, अनेक जातियां, अनेक धर्म और तरह–तरह के वर्ग इस विशाल देश की विशेषता हैं एक अरब 21 करोड़ की आबादी देश के अनेक राज्यों में निवास करती है। एक राज्य से दूसरे राज्य की विशेषताएं पृथक है। जीवन शैली और कार्यशैली में अन्तर है। तीज–त्यौहारों में अन्तर है। अगर किसी चीज में अन्तर नहीं है, तो नारी की स्थिति और उसके अस्तित्व में।

नारी और पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों व अन्तःक्रियाओं का यदि विश्लेषण किया जाए तो प्रत्येक स्थान पर नारी द्वितीय पायदान पर खड़ी दिखाई पड़ती है। कृषि समाज स्थापित होने के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना में वृद्धि होती है। संयुक्त परिवार स्थापित होते हैं और स्त्री वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में मानी जाने लगती है। परिवार जो हमारी समाज व्यवस्था का शक्तिशाली आधार रहा है, वहां नारी का सबसे अधिक शोषण और उत्पीड़न हुआ है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी स्वतंत्र होकर नहीं, बंदी होकर जीवित रहती थी, क्योंकि वह पुरुष पर पूरी तरह आश्रित थी। शिक्षा के अभाव में स्वाभिमान और आत्मविश्वास कहां उत्पन्न हो सकता है।

भारतीय समाज व संस्कृति अति प्राचीन व गौरवपूर्ण है। वास्तव में किसी भी समाज की संस्थानों का स्वरूप और उसका संगठन उस समाज की संस्कृति द्वारा निर्धारित और संगठित होता है। अतः किसी भी समाज की संरचना और संस्कृति में एकता और विविधता का सिंहावलोकन करने के लिए उसकी सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन अनिवार्य होता है। इस दृष्टि से जब हम भारतीय समाज और संस्कृति को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति की मूल विशेषता उसकी सहिष्णुता व ग्रहणशील और गत्यात्मक प्रकृति है। इस प्रकृति का विशाल स्रोत विभिन्नता में एकता है। भारतीय समाज में आर्य, अनार्य, द्रविण, शक, हूण, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा मंगोल, पारसी आदि अनेक प्रजातियों के लोग समय–समय पर यहाँ आये और यहाँ की संस्कृति के रंग में रंगते हुए राष्ट्रीय धारा में समा गये। इतना ही नहीं बल्कि विश्व की विभिन्न संस्कृतियों, विचारों, दर्शनों, धर्मों, भाषाओं आदि के प्रति सहनशीलता का परिचय देते हुए, उन्हें अपने में समाहित किया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज एवं संस्कृति विभिन्नताओं की एक लीलाभूमि बन गया है। इन्हीं के आधार पर कहा जाता है कि भारत विभिन्न प्रजातियों, जातियों, धर्मों, भाषाओं, प्रथा एवं परम्पराओं का एक सम्मिश्रण है और इसकी संस्कृति में एकता का नितान्त अभाव है, लेकिन ऐसा निष्कर्ष भारतीय समाज, संस्कृति एवं जनजीवन के ऊपरी सतह को देखकर लिया गया और इसकी आंतरिक मूलभूत एकता अनदेखी ही रह गई। यद्यपि भारतीय समाज और संस्कृति का वाह्य स्वरूप अनेक विभिन्नताओं का पुंज है, किन्तु इसका आन्तरिक स्वरूप एक है, मौलिक व अखण्ड रूप में एक है।

आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता

पितृसत्तात्मक अर्थव्यवस्था में पुरुष का आर्थिक संस्थाओं पर नियंत्रण होता है। पुरुष ही सम्पत्ति का मालिक होता है। वही आर्थिक गतिविधियों की दिशा तय करता है एवं विभिन्न उत्पादन सम्बंधी क्रिया–कलापों का मूल्य निर्धारित करता है। समाज में महिलाओं द्वारा किये गए श्रम को आर्थिक मान्यता नही मिलती, साथ ही उनको पुरुषों की तुलना में समान कार्य के लिए समान वेतन नहीं मिलता अर्थात् महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मेहनताना मिलता है। महिलाओं के घर गृहस्थी के कार्य का आर्थिक मूल्यांकन नहीं किया जाता। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महिलाओं की मां की भूमिका, मानव संसाधन का उत्पादन तथा लालन–पालन को आर्थिक गतिविधि ही नहीं माना जाता। हाइडी हार्टमान्न का मानना है कि पुरुष का नारी की श्रम शक्ति पर नियंत्रण ही पितृसत्ता का आर्थिक आधार है। नारी की पहुंच से कुछ आवश्यक उत्पादक संसाधनों को दूर रखकर यह नियंत्रण बरकरार रखा जाता है। भारत में मनु ने नारी को धार्मिक कर्मकाण्डों में स्वतंत्र भागीदारी, शिक्षा व आर्थिक संसाधनों की मिल्कियत से वंचित कर पितृसत्ता की नींव रखी।

गर्दा लर्नर के अनुसार पितृसत्ता ने नारी का सहयोग हासिल करने के लिए कई हथकंडे अपनाए हैं। इनमें प्रमुख है नारी को शिक्षा के क्षेत्र से दूर रखना। उसको अपने इतिहास के ज्ञान से महफूज रखना। स्त्रियों को आपस में बांटे रखना। नारी के यौन आचरण को सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदण्ड बनाकर उनको भद्र तथा गिरी हुई नारी की श्रेणियों में रखना, साम दाम दण्ड भेद की नीति अपनाकर नारी को आर्थिक संसाधनों और राजनीतिक सत्ता दूर रखना तथा पितृसत्ता के दायरे में सिमटी

रहने वाली स्त्रियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना आदि। यह सामाजिक सुरक्षा उसको अपने संरक्षक पुरुष के माध्यम से मिलती है। हर नारी जन्म से ही यह भली

प्रकार समझा दिया जाता है कि उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही हैं। सिल्विया वाल्बी अपनी पुस्तक Patriarchy, Structure and Gender Inequality (1990) में बताती है कि पितृसत्ता लिंग असमानता बनाए रखने का काम करती है। वह बताती है कि किस प्रकार यह सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में अलग–अलग तरीके से काम करती है, पर मकसद एक ही होता है– नारी की असमानता तथा दोयम दर्जे को बनाए रखना। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के ढाँचों के आकार में भिन्न होती है। घर की व्यवस्था का ढाँचा रोजगार की जगह की व्यवस्था के ढाँचे से भिन्न होता है। परन्तु उनमें एक रिश्ता अवश्य होता है। उनका लक्ष्य एक होता है और वह सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में लिंग असमानता बनाए रखने के लिए पितृसत्ता अलग–अलग प्रकार की राजनीति अपनाती है। घर पर लागू होने वाली रणनीति को वाल्बी एक्सक्लूशनरी कहती है और कार्यालय में लागू होने वाली रणनीति को सेंग्रीगेशनिस्ट कहती है। एक्सक्लूशनरी रणनीति घरेलू उत्पादन की प्रकृति पर आधारित है। इस रणनीति का इस्तेमाल घर का मुखिया अपने हिसाब से करता है। वह अपनी अधीनस्थ हर महिला का अपने हिसाब से सीधे–सीधे दमन तथा शोषण करता है। सार्वजनिक क्षेत्र में इस्तेमाल होने वाली सेंग्रीगेशनिस्ट रणनीति में नारी को सार्वजनिक क्षेत्र से दूर रखने के प्रयास होते है। नारी को पितृसत्ता के अधीन रखने के लिए भिन्न–भिन्न संस्थाओं का सहारा लिया जाता है।

समाज में लिंग के आधार पर जो श्रम का विभाजन है, वह भी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था की ही देन है। विज्ञान, वैधक–शास्त्र तथा लोक संस्कृति ने उसको सामान्यीकृत कर सामाजिक मान्यता दी। लिंग आधारित श्रम विभाजन केवल पारिवारिक समस्या नही हैं, बल्कि यह पूरे समाज की ढाँचागत समस्या है। पुरुष तथा महिला के बीच श्रेणीबद्ध श्रम विभाजन और इसकी गतिशीलता समय विशेष या समाज विशेष के मुख्य उत्पादन के रिश्तों का अभिन्न अंग होते हे। आर्थिक क्षेत्र में लिंग आधारित श्रम विभाजन पितृसत्ता की उपज है। घर से बाहर के उत्पादन कार्यों में महिला की भागीदारी विभिन्न कालों में, विभिन्न समाजों में अलग–अलग रही है।

लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था में महिला के श्रम को, पुरुष से कमतर ही आंका जाता है और उनको समान कार्य के लिए पुरुष से कमतर मेहनताना मिलता है। आमतौर पर अधिकतर महिलाएं उन क्षेत्रों में काम पाती हैं, जहाँ कम दक्षता की आवश्यकता होती है, मेहनताना भी कम हेाता है, काम करने की परिस्थितियां खराब होती है, नौकरी की सुरक्षा नहीं होती है तथा पदोन्नति के अवसर भी नहीं के बराबर होते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पूँजीवादी श्रम बाजार की विशेषता होती है कि लिंग के आधार पर व्यवसायिक अलगाव का पाया जाना।

निष्कर्ष

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता प्राचीन काल से विद्यमान है। लैंगिक असमानता की शुरुआत विवाह, परिवार और उत्तराधिकार जैसी मूलभूत संस्थाओं से प्रारम्भ होती है। इसके बाद धर्म, परम्परा, रीति–रिवाज, संस्कार, नैतिकता एवं कानून का सहयोग लेकर इसका समाज में विस्तार किया गया। पुरूष के वर्चस्व को बनाये रखने के लिए ही पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था को बनाया गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पहले महिलाओं को घर के अन्दर दबाया गया, फिर उसे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित करके, उन्हें कमजोर कर दिया गया। इस प्रकार महिला पुरूष की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन कर रह गयी और आजीवन पुरूष पर आश्रित हो गयी। भारत में सामाजिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता परिवार, शिक्षा, विवाह, जाति, धर्म, नातेदारी, स्वास्थ्य में आर्थिक क्षेत्र में श्रम–विभाजन, सम्पत्ति, मजदूरी में तथा राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता में भागीदारी के रूप में विद्यमान है।

प्रस्तुत शोध में अनुसंधानकर्ता द्वारा इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया है कि शिक्षा समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को समाप्त करने में कहां तक समर्थ है, क्योंकि शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार एवं समाज में व्याप्त सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान करने का प्रमुख साधन माना जाता है। चूंकि लैंगिक असमानता की जड़े समाज में काफी गहरी है। धर्म, ग्रन्थ, पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था आदि ये सभी महिलाओं की तुलना में पुरुषों को ज्यादा महत्व देते है। समाज में इनकी श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा इन मूल्यों महिलाओं के अन्दर प्रविष्ट करा दिया जाता है। महिलाऐं इसे अपना कर्तव्य समझने लगती है। क्या शिक्षा के द्वारा महिलाओं के दृष्टिकोण में इन सामाजिक मान्यताओं एवं मूल्यों के प्रति कोई बदलाव आ रहा है या नहीं? इसी तथ्य को ज्ञात करने के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त लैंगिक असमानता एवं शिक्षा के अन्तःसम्बन्धों को विवेचित किया गया है। इसके द्वारा महिलाओं के लैंगिक असमानता के प्रति बदलने दृष्टिकोण में शिक्षा द्वारा होने वाले परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह दृष्टिगोचर होता है कि शिक्षा के द्वारा महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की है। शिक्षित महिलाओं ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में नये क्षितिज को प्राप्त किया। वर्तमान में महिलाओं के सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन लैंगिक असमानता के सन्दर्भ में शिक्षा की भूमिका संदिग्ध नजर आती है, क्योंकि पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम का निर्माण अधिकांशतः पुरूष वर्ग द्वारा ही किया जाता है, साथ ही उनकी विषयवस्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था, संस्कृति, परम्परा एवं धर्म का समर्थन करती हुई प्रतीत होती है। यद्यपि लैंगिक असमानता के मुद्दे पर सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में शिक्षित महिलाओं के दृष्टिकोण में बदलाव आना तो प्रारम्भ हो गया है, किन्तु अपेक्षित बदलाव अभी नहीं आ पाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- बंसल, वंदना (2004),पंचायती राज में महिला भागीदारी, कल्याण पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- कानिटकर, मुकुल (2016), भारत में महिला शिक्षा : समाज व सरकार की भूमिका, योजना, सितम्बर, 2016.

- कौशिक, आशा (2003), नारी सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर.
- कुमार, राकेश (2011), नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला, हरियाणा।
- कुमार, गौरव (2015), महिला सशक्तीकरण में बेटी–बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओ योजना, कुरूक्षेत्र, मार्च 2015, अंक 05.
- कुमारी, रंजना और दुबे, अंजू (1994), वुमेन पार्लियामेंटरियन, हरा नन्द पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली.
- कुमाव, ललित (2004), पंचायती राज एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व–एक समाजशास्त्रीय विवेचन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली.
- कुशवाहा, मधु (2014), जेण्डर और शिक्षा, गंगा सरन ऐण्ड ग्रैण्ड सन्स, वाराणसी
- मोदी, अनीता (2011), महिला सशक्तीकरण के विविध आयाम, बाईकिंग बुक्स, जयपुर.
- मेहरोत्रा, ममता (2011), महिला अधिकार और मानव अधिकार, ज्ञानगंगा प्रकाशन, दिल्ली।
- मित्तल, मुक्ता (1995), वुमन पॉवर इन इण्डिया, अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- सिंह, मिनाक्षी निशांत (2006), महिला सशक्तीकरण का सच, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
- सिंह, वी0एन0 एवं जनमेजय (2013), भारत में सामाजिक आन्दोलन, रावत, पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- सिंह, वी0एन0 सिंह, जनमेजय (2012), नारीवाद, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- भारत (2018), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली।
- परमार, शुभ्रा (2015), नारीवादी सिद्धान्त और व्यवहार, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद
- पेनी केन, (2009), माइग्रेशन वर्कफोर्स एण्ड हेल्थ, वूमन एण्ड आक्यूपेशनल :दृश्य एण्ड पॉलिसी, द ग्लोबल कमीशन ऑफ वूमन्स हेल्थ.
- श्रीनिवास, एम0एन0 (1978), द चेंजिंग पोजिशन ऑफ इण्डियन वूमेन, हिन्दुस्तान पब्लिशिंग, नई दिल्ली.